भारत सरकार

भारत का विधि आयोग

मृत्युदंड पर परामर्श पत्र

मई, 2014

वे जो भारत के विधि आयोग को सुझाव/टिप्पणियां भेजने के इच्छुक हैं, 30 दिनों के भीतर अपने लिखित सुझाव/टिप्पणियां अंग्रेजी या हिन्दी में सदस्य सचिव, भारत का विधि आयोग, हिन्दुस्तान टाइम्स हाउस, 14वां तल, कस्तूरबा गांधी मार्ग, नई दिल्ली.11001 को या ई मेल : lci-dla@nic.in पर भेज सकते हैं ।

Archived

परामर्श पत्र

विषय : मृत्यु दंड

भाग – 1 प्रस्तावना

1 21 जनवरी, 2014 को शत्रुघ्न चौहान बनाम भारत संघ[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने 15 मृत्यु दोषसिद्ध व्यक्तियों के मृत्यु दंडादेशों को घटाकर आजीवन कारावास में परिवर्तित किया । इन मृत्यु दंडादिष्ट व्यक्तियों ने भारत के राष्ट्रपति द्वारा अपनी दया याचिकाएं खारिज होने के पश्चात् अंतिम आश्रय के रूप में सर्वोच्च न्यायालय में आवेदन किया । इस सामूहिक मामले में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उच्चतम न्यायालय द्वारा इन मृत्यु दंडादिष्ट व्यक्तियों के मामलों में मृत्युदंड की पुष्टि के समय के बाद अनेक ऐसी अभिवर्ती परिस्थितियां पैदा हो गई जिनसे उनके मूल अधिकारों का इस हद तक अतिक्रमण हुआ जो उनके दंडादेशों के वास्तविक निष्पादन को अनुचित और दमनकारी ठहराती है । इस विनिश्चय के ठीक पश्चात् वी. श्रीहरण बनाम भारत संघ[2] वाले मामले में पुनः उच्चतम न्यायालय ने राजीव गांधी हत्या वाले मामले में सभी तीन मृत्युदंड से दोषसिद्ध व्यक्तियों को दंडादेश कम करने हेतु मृत्यु न्यायशास्त्र के इस आधार का अवलंब लिया । इसी प्रकार देवेन्दर पाल सिंह भुल्लर[3] वाले मामले में न्यायालय ने निष्पादन में अतिविलंब और याची द्वारा झेले गए मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के आधार पर दोषसिद्ध व्यक्ति के मृत्युदंड के दंडादेश को कम कर दिया ।

इन उच्चतम न्यायालय विनिर्णयों ने हाल ही में कम से कम कुल 19 आसन्न प्राणदंड को रोका । यह विचार पैदा होता है कि पिछले वर्ष अजमल कसाब और अफजल गुरु को फांसी देने के पहले

---

[1] (2014) 3 एससीसी 1

[2] (2014) 4 एससीसी 242

[3] नवनीत कौर बनाम राज्य (दिल्ली राज्य क्षेत्र), 2013 की सुधार याचिका (दांडिक) सं. 88 (विनिश्चित तारीख 31 मार्च, 2014)

Archived

भारत में 8 वर्ष की अवधि तक कोई फांसी नहीं दी गई थी । इस तथ्यतः विलंबन से कई लोगों में यह विश्वास दिलाया और लोगों ने यह तर्क करना आरंभ किया कि भारत को इस सर्वाधिक आपवादिक और आत्यंतिक शास्ति को प्रतिधारित करने की उपयोगिता और वांछनीयता पर विचार करना चाहिए । उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रभावित इन लघूकरणों ने एक बार पुनः मृत्युशास्ति पर बहस आरंभ कर दी है । एक बार पुनः लोगों ने कानूनी पुस्तक से मृत्युदंड जैसी शास्ति को बनाए रखने के लक्ष्य के बारे में अनुमान लगाना आरंभ कर दिया है । मुद्दे पर प्रमुख मीडिया में काफी बहस हो रही है । मुख्य समाचार पत्रों के संपादकीय में मृत्युशास्ति पर फिर से विचार करने की मांग प्रकाशित की गई है ।[4]

ऐसी स्थिति में, विषय का व्यापक अध्ययन और इस मुद्दे पर आम बहस का योगदान उपयोगी और हितकर होगा । ऐसा अध्ययन इस विवादास्पद मुद्दे पर विधि निर्माताओं और न्यायाधीशों को अभिविन्यास आधारित निश्चित अनुसंधान भी उपलब्ध कराएगा ।

2. पिछला दशक में उच्चतम न्यायालय में मृत्युशास्ति विषय पर गहनता से विचार-विमर्श किया गया । विभिन्न अवसरों पर सर्वोच्च न्यायालय ने मृत्युशास्ति पर विधि के विषम उपयोग और इसके संवैधानिकतः ऋजु विवक्षा पर विचार किया (इस विषय के विस्तृत आयाम के लिए भाग IV देखिए) । एक ऐसे व्यवस्थित अध्ययन की बहुत आवश्यकता है जो न्यायालयों के प्रश्नों और चिन्ताओं को संबोधित करे और मुद्दे पर अन्तरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य को भी प्रस्तुत करे । न्यायालय ने इनमें से कुछ मामलों में विनिर्दिष्टतः विधि

---

[4] इंडियर एक्प्रेस संपादकीय, "अतिमानवीय न्याय", 22 जनवरी, 2014 http://indianexpress.com/article/opinion/editorials/justice-more-humane/ पर उपलब्ध है, हिन्दुस्तान टाइम्स संपादकीय "मृत्युशास्ति पर उच्चतम न्यायालय का विनिर्णय, इसके उत्सादन के एक पग समीप http://www.hindustantimes.com/comment/sc-ruling-on-death-penalty-a-step-closer-toits-abolition/article1-1175780.aspx; पर उपलब्ध । हिन्दू संपादकीय "विलम्ब का अन्याय" 23 जनवरी, 2014 http://www.thehindu.com/opinion/deitorial/the-injustice-of-delay/article5606434.ece पर उपलब्ध

Archived

आयोग से इस बाबत अनुसंधान करने का अनुरोध किया है । उच्चतम न्यायालय ने संतोष कुमार सतीशभूषण बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य[5] वाले मामले में इस बाबत यह मत व्यक्त किया ।

> "112. हम इस बात से भी भिज्ञ है कि 18.12.2007 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने देशों से यह आग्रह करते हुए संकल्प 62/149 स्वीकार किया कि मृत्युशास्ति को समाप्त करने की दृष्टि से फांसी पर विश्वव्यापी विलंबन स्थापित करने के लिए मृत्युशास्ति प्रतिधारित करें । तथापि, भारत उन 59 राष्ट्रों में से एक है जिसने मृत्युशास्ति प्रतिधारित किया । भारत के विधि आयोग या राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा विषय पर नवीनतम और ज्ञानप्रद विचार-विमर्श तथा बहस विश्वसनीय अनुसंधान की अनुज्ञा दी जाए ।" [बल देकर कहा गया]

इसी प्रकार, शंकर किशनराव खाडे बनाम महाराष्ट्र राज्य[6] वाले मामले में भी न्यायालय ने मृत्युशास्ति के मुद्दे के एक अन्य आयाम पर विचार किया और मुद्दे पर अनुसंधान की कमी पर चिन्ता जाहिर की । न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :

> "148. मुझे लगता है कि न्यायालय विरल से विरलतम सिद्धांत लागू कर रहे हैं किन्तु कार्यपालिका मृत्युदंड को आजीवन कारावास में संपरिवर्तित करने के लिए न्यायालयों को अज्ञात कुछ कारकों पर विचार कर रही है । इस बाबत यह अनिवार्य है चूंकि हम लोगों (अभियुक्त और बलात्संग-हत्या पीड़ित दोनों) के जीवन के संबंध में विचार कर रहे हैं कि न्यायालयों को मृत्युशास्ति अधिनिर्णीत करने के लिए न्यायशास्त्र आधार अधिकथित करने चाहिए और जब विकल्प सुस्पष्टतः वर्जित हो ताकि व्याप्त अनिश्चितता से बचा जा सके । मृत्युशास्ति और इसका निष्पादन अनिश्चितता का विषय नहीं होना चाहिए तथा न ही मृत्युदंड को आजीवन कारावास में संपरिवर्तित किया जाना अवसर की बात होनी चाहिए । संभवतः भारत का विधि आयोग

---

[5] (2009) 6 एससीसी 498

[6] (2013) 5 एससीसी 546

Archived

यह परीक्षा कर मुद्दे को सुलझा सकता है कि क्या मृत्युशास्ति एक निवारक दंड हैं या प्रतिशोधात्मक न्याय है या अक्षम लक्ष्य का पूरा करता है ।

149. प्रथमदृष्ट्या यह प्रतीत होता है कि राज्य के दो महत्वपूर्ण अंग अर्थात् न्यायपालिका और कार्यपालिका मृत्यु से दंडनीय अपराध के दोषसिद्ध व्यक्तियों के साथ विभिन्न मानक अपनाते हैं । जहां न्यायपालिका द्वारा लागू मानक विरल से विरलतम सिद्धांत है (तथापि इसका उपयोग वस्तुनिष्ठ या न्यायाधीश केन्द्रित हो सकता है), वहीं लघूकरण मंजूर करने में कार्यपालिका द्वारा लागू मानक ज्ञात नहीं है । अतः यह हो सकता है (और उचित ही ऐसा हुआ) कि ऐसे मामले में सेशन न्यायाधीश, उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय दोषसिद्ध व्यक्ति को मृत्युशास्ति अधिनिर्णीत करने में एकमत है, कोई अन्य विकल्प अविवाद्यतः वर्जित है, किन्तु कार्यपालिका ने व्यासतः विपरीत मत व्यक्त किया और मृत्युशास्ति को लघूकृत किया । भारत के विधि आयोग द्वारा इस पर भी विचार किए जाने की आवश्यकता है ।" [बलपूर्वक कहा गया]

भाग 2. मृत्युशास्ति पर विधि आयोग की पूर्व स्थिति

1. 35वीं रिपोर्ट (1967)

वर्ष 1962 में, विधि आयोग ने कानूनी पुस्तक से मृत्युदंड के उत्सादन के मुद्दे पर गहनता से विचार करने का उत्तरादायित्व लिया । विधि आयोग को इस आशय का निर्देश तब किया गया जब लोकसभा ने मृत्युदंड के उत्सादन पर लोकसभा के सदस्य श्री रघुनाथ सिंह द्वारा लाए गए संकल्प पर बहस की । विधि आयोग ने 1967 में मृत्युशास्ति को प्रतिधारित करने की सिफारिस करते हुए अपनी 35वीं रिपोर्ट सौंपी ।[7]

विधि आयोग द्वारा निकाले गए कई निष्कर्ष तत्कालीन विद्यमान संस्कृति

---

[7] विधि आयोग की यह रिपोर्ट विधि आयोग की वेबसाइट lci-dla@nic.in पर उपलब्ध है ।

Archived

और सामाजिक जीवन के सामान्य तत्वों के निगमन पर आधारित थे । शिक्षा, अपराध दर आदि जैसे आयोग द्वारा विचारित कुछ संकेतकों में पिछले अर्द्धशतक में काफी परिवर्तन आए हैं । उदाहरणार्थ, विधि आयोग का निम्नलिखित दृढ़ उद्धृत मत तत्कालीन सामाजिक-राजनैतिक वातावरण में स्पष्ट रूप से सुस्थित हो गया है और उस हद तक बहुत सीमित है कि कैसे इसका उपयोग वर्तमान समय के संदर्भ में किया जा सकता है :

> "तथापि, भारत की स्थिति, इसके निवासियों के सामाजिक पालन-पोषण की विभिन्नता, देश में नैतिकता और शिक्षा के स्तर में असमानता, इसके क्षेत्र की विशालता, इसकी जनसंख्या की विविधता और वर्तमान समय में देश की विधि और व्यवस्था बनाए रखने के लिए सर्वाधिक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, भारत मृत्युदंड के उत्सादन के अनुभव का जोखिम नहीं उठा सकता है । "

रिपोर्ट में यह मत व्यक्त किया गया कि यह सुझाव कि अनुभव के रूप में मृत्युदंड को नियत अवधि के लिए उत्सादित किया जाए, जोखिम अवांछनीय है क्योंकि इसके उत्सादन और पुनः लागू किए जाने के बीच हिंसा का मध्यवर्ती युग हो सकता है और मृत्युदंउ के पुनः लागू किए जाने से विधि और व्यवस्था को प्रत्यास्थापित करने का वांछित प्रभाव नहीं हो सकेगा । यह भी उल्लेखनीय है कि वर्ष 2004 और 2013 के बीच 8 वर्ष की अवधि तक भारत फांसी मुक्त रहा । ऐसे वर्ष जब भारत में कोई फांसी नहीं दी गई, को नैसर्गिक अनुभव के रूप में माना जा सकता है जो तथ्यतः विलंबन के समतुल्य है । इस अवधि के दौरान, राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो का अपराध आंकड़ा अपराध दर में कोई विशिष्ट वृद्धि नहीं प्रदर्शित करता है । किन्तु वहीं, हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि इस अवधि के दौरान, न्यायालयों द्वारा सामान्य दर से मृत्युदंड अधिनिर्णीत या कायम किए जाते रहे । उस सीमा तक इस अवधि को वास्तविक फांसी के संदर्भ में थोड़ा ही विलंबन माना जा सकता है न कि न्यायालयों द्वारा मृत्युशास्ति की उपयोज्यता पर, इसलिए, अपराध दर पर इसके प्रभाव को इस प्रकार माना जाए ।

विधि आयोग की 35वीं रिपोर्ट ने यह मत व्यक्त किया कि मृत्युदंड वाले

Archived

मामले में अधिनिर्णेय दंड के विषय पर न्यायालय के विवेकाधिकार को प्रतिधारित किया जाए और ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग कुल मिलाकर समाधानप्रद रूप से और न्यायिक सिद्धांतों के अनुसार किया जाए । रिपोर्ट में यह मत व्यक्त किया गया कि "आजीवन कारावास (ऐसे अपराध जिसके लिए विहित दंड मृत्यु या आजीवन कारावास है, की बावत) के लिए कम दंड अधिनिर्णीत करने में न्यायालय किन विषयों पर विचार करता है या विचार करे, को संहिताबद्ध नहीं किया जा सकता है । दंड से संबंधित विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय, ऐसी परिस्थितियां जिन पर विचार करना चाहिए या विचार नहीं करना चाहिए और ऐसी परिस्थितियां जिन पर अन्य परिस्थितियों के स्थान विचार करना चाहिए और ऐसी परिस्थितियां जो स्वयंमेव पर्याप्त हो सकती है, संपूर्णतः उपवर्णित नहीं किया जा सकता है ।" रिपोर्ट में यह मत व्यक्त किया गया कि विवेकाधिकार का प्रयोग स्थानीय स्थिति, भावी विकास, समुदाय के नैतिक आभास के विकास, विशिष्ट समय या स्थान पर अपराध की दशा और कई अन्य अप्रत्याशित लक्षणों पर निर्भर हो सकता है । यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि विधि आयोग की रिपोर्ट बच्चन सिंह बनाम पंजाब राज्य[8] जिसमें "विरल से विरलतम" सिद्धांत अधिकथित किया गया, वाले महत्वपूर्ण निर्णय के पहले प्रस्तुत की गई थी जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि जब अनुकल्पी विकल्प निश्चित रूप से वर्जित हो जाएं तो "विरल से विरलतम मामलों" में ही मृत्युदंड अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए । न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मृत्युदंड वाले अपराधों में दंडादेश देते समय न्यायालयों को अपने मस्तिष्क में अपराध और अपराधी से संबंधित गंभीर कारक और उपशमनकारी परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए ।

अतः "विरल से विरलतम" सिद्धांत के आलोक में मृत्युदंड के मार्गदर्शक सिद्धांतों पर नए सिरे से विचार करने की आवश्यकता है । इसके सिवाय, विधि आयोग की रिपोर्ट में मृत्युदंड देते समय न्यायालय के विवेकाधिकार के मनमाने प्रयोग से संबंधित आशंका पर विस्तार से चर्चा नहीं की गई है । हाल ही के वर्षों में, उच्चतम न्यायालय ने स्वीकार किया कि मृत्युशास्ति का प्रश्न व्यक्तिनिष्ठ तत्व से मुक्त नहीं है और कभी-कभी आम जनता की राय द्वारा असम्यक् रूप से प्रभावित है । इस

[8] 1980 (2) एससीसी 684

Archived

संदर्भ में यह अनिवार्य है कि यह उजागर करने के लिए गहन अध्ययन किया जाए कि क्या मृत्युदंउ अधिनिर्णीत करने की प्रक्रिया व्यक्तिनिष्ठता और सनकीपन से ग्रस्त है ।

विधि आयोग ने अपनी 35वीं रिपोर्ट में भारतीय दंड संहिता की उस धारा 303 को प्रतिधारित करने की सिफारिश की जो मृत्युशास्ति को आज्ञापक बनाने का उपबंध करती है । आयोग ने इस बाबत निम्नलिखित विचार व्यक्त किया :

> "भारतीय दंड संहिता की धारा 303 जिसके अधीन किसी अपराध के लिए मृत्युदंड आज्ञापक है, दंडादेश के प्रश्न को न्यापयालय के विवेकाधिकार पर छोड़कर या ऐसे मामलों को जहां पूर्व अपराध ऐसा अपराध है जिसके लिए अपराधी को मृत्युदंड दिया जा सकता है, धारा के प्रचालन तक सीमित कर संशोधित किए जाने की आवश्यकता नहीं है ।"

यह उल्लेखनीय है भा.द.सं. की धारा 303 को मीठू बनाम पंजाब राज्य[9] वाले मामले में असंवैधानिक अभिनिर्धारित किया गया । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया :

> "23. विभिन्न परिस्थितियां जिनका उल्लेख हमने अपने निर्णय में किया है, पर विचार करते हुए, हमारी यह राय है कि दंड संहिता की धारा 303 अनुच्छेद 14 में अंतर्विष्ट समता की गारंटी और संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त अधिकार, किसी भी व्यक्ति को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के सिवाय अपने प्राण या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा, का अतिक्रमण करती है । मूलतः, धारा को दोषसिद्ध व्यक्तियों द्वारा कारागार के कर्मचारियों पर हमला करने को हतोत्साहित करने के लिए बनाया गया था किन्तु विधानमंडल ने ऐसी भाषा का प्रयोग किया जो उसके आशय से अधिक कठोर है ।"

मीठू वाले मामले का अवलंब लेते हुए पंजाब राज्य बनाम दलवीर सिंह

---

[9] (1983) 2 एससीसी 277

Archived

वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने मृत्युशास्ति को आज्ञापक बनाते हुए आयुध अधिनियम, 1954 की धारा 27(3) को अभिखंडित किया ।

आयोग ने अपनी रिपोर्ट में गलत दोषसिद्धियों के संदर्भ में मृत्युदंड की अप्रतिसंहार्यता के पहलू पर भी विचार किया और यह मत व्यक्त किया कि दया की परमाधिकार शक्ति, अपील और पुनर्विलोकन का शक्ति तथा मृत्युदंड व्यक्तियों को दी जाने वाली विधिक सहायता जैसे संवैधानिक और कानूनी सुरक्षोपायों से विधि के लिए यह सुनिश्चित करना गंभीर विषय है कि त्रुटियों का अवसर कम से कम हो । त्रुटिपूर्ण दोषसिद्धियों के विरुद्ध प्रस्तावित सुरक्षोपायों का विश्लेषण करते समय, आयोग ने यह मत व्यक्त किया :

> ''तथापि, हम यह आशा करते हैं कि ऐसे मामलों की संख्या अधिक न हो । पहले से ही उपवर्णित उपबंधों के अधीन न्यायिक संवीक्षा की छलनी से छानने और दया के परमाधिकार के प्रयोग की कार्यवाही की संवीक्षा करने के पश्चात् तात्विक मिथ्या के तत्व प्रतिधारित करना मामले में कठिन होगा, बल्कि हम यह कह सकते हैं कि यह असंभव होगा । यदि ऐसी संवीक्षा के पश्चात् ऐसे तत्व रह जाते हैं तो ही प्रक्रियात्मक और अन्य उपबंधों के सतत् पुनर्विलोकन की आवश्यकता होती है । इस रिपोर्ट में कहीं अन्यत्र स्वयं हमने त्रुटि के विरुद्ध सुरक्षोपायो के सुसंगत उपबंधों में सुधार के प्रश्न को उठाया है और उस पर चर्चा की है । किन्तु उचित परिप्रेक्ष्य में मामले पर विचार करने हेतु, हम यह कहने की स्थिति में नहीं है कि त्रुटि की संभावना ऐसा तर्क नहीं है जो समाज के संरक्षण के आशयिक उपबंध की सर्वोत्तम आवश्यकता को बिल्कुल विस्थापित कर सकता हो ।''

आयोग द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष बच्चन सिंह के पूर्व समय और यहां तक कि 1973 में दंड प्रक्रिया संहिता में किए गए संशोधनों के पूर्व तारीख का है । नई कानूनी स्थिति के साथ-साथ बच्चन सिंह वाले मामले में संविधान न्यायपीठ का विनिश्चय पूर्व समय में यथाविद्यमान मानकों की उपयुक्तता से संबंधित आयोग द्वारा अभिलिखित समाधान को असंगत बनाता है । इसके पूर्व से अधिक कठोर उचित मानकों वाले समकालीन न्यायिक विकासों में उच्चतम न्यायालय ने पिछले 5 वर्षों से

Archived

बारंबार मृत्युशास्ति वाले मामलों में हुए न्याय हत्या के बारे में भी मृत्युशास्ति के अनियमित लागू होने के बारे में चिन्ता व्यक्त की है ।

वर्ष 2009 में, उच्चतम न्यायालय ने रावजी उर्फ रामचन्द्र बनाम राजस्थान राज्य[10] वाले मामले में अधिकथित अनवधानता के कारण विधि घोषित किया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया कि अपराधी से संबंधित लक्षणों का अपवर्जन करते हुए अपराध से संबंधित लक्षण ही आपराधिक विचारण में दंड देने के लिए सुसंगत हैं । बरियार वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने राव जी वाले मामले को पूर्वोक्त प्रतिपादना पर बच्चन सिंह की उक्ति को अवधानता के कारण किया गया अभिनिर्धारित किया जिसने अधिकथित किया कि अपराध और अपराधी दोनों से संबंधित परिस्थितियों की पहचान की जानी चाहिए । बरियार वाले मामले में निर्णय दिए जाने के समय तक, राव जी वाले मामले का निष्पादन किया जा चुका था और आक्षेपित निर्णय में अधिकथित प्रतिपादना का अनुसरण कई अन्य मामलों में किया गया था । पूर्वोक्त मामले अपीलों के विद्यमान तंत्र की पर्याप्तता और त्रुटिपूर्ण दोषसिद्धियों के विरुद्ध सुरक्षोपायों हेतु न्यायालयों द्वारा पुनर्विलोकन शक्ति को विवादित करते हैं । राव जी मामले के आक्षेपित निर्णय का अवलंब लेकर मृत्युदंड दंडादिष्ट दो दोषसिद्ध व्यक्तिय पूर्व रिपोर्ट में यथा उल्लिखित दया शक्ति के उपबंध के बावजूद फंदे से बच नहीं सके [दोषयुक्त राव जी की उक्ति के अवलंब से उद्भूत न्याय की अवहेलना पर – भाग IV – भारत में मृत्युशास्ति के सामयिक प्रशासन पर न्यायिक टिप्पणियां देखें]

फिर भी, हाल ही में, उच्चतम न्यायालय ने आजीवन कारावास के पन्द्रह दोषसिद्ध व्यक्तियों को उनकी दया याचिकाएं विनिश्चित करने में दया शक्ति का प्रयोग करने में अति विलंब के कारण उनके मूल अधिकारों के अतिक्रमण के आधार पर तेरह याचिकाओं के सामूहिक मामले में मृत्युदंड को कम किया और दया शक्ति के प्रयोग के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित किया[11] ।" उनके मूल अधिकारों के अतिक्रमण के

---

[10] एआईआर 1996 एससी 787

[11] शत्रुघ्न चौहान बनाम भारत संघ (2014) 3 एससीसी 1, एक सामूहिक मामले में अपना निर्णय सुनाते हुए उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित 13 याचिकाओं – रि. या. (दां.) सं. 34/2013-शामिक नारायण और अन्य ब. भारत संघ और अन्य, रि.

Archived

परिणामस्वरूप उनके दंड के लघूकरण से यह प्रश्न उभरता है कि क्या दया की विद्यमान शक्ति त्रुटिपूर्ण दोषसिद्धियों के विरुद्ध पर्याप्त सुरक्षोपाय है । इस पृष्ठभूमि में, त्रुटिपूर्ण दोषसिद्धियों के विरुद्ध विद्यमान सुरक्षोपायों की पर्याप्तता का पुनर्विलोकन करने और सुनिश्चित करने की आवश्यकता है ।

इसके आतिरिक्त, आयोग ने मृत्युशास्ति के उत्सादन पर तत्कालीन व्याप्त रूढ़िवादी वैश्विक परिदृश्य का प्रतिनिर्देश किया । तब से, विश्व में उत्सादनकारी आन्दोलन से वास्तविक परिवर्तन आया है । यह उल्लेखनीय है कि पूरे विश्व में, 140 से अधिक देशों ने मृत्युशास्ति समाप्त कर दी है और 20 से अधिक देशों ने यद्यपि शास्ति प्रतिधारित की है फिर भी दस वर्षों से मृत्युदंड निष्पादित नहीं किया । इसके अतिरिक्त, ऐसे देशों का भी एक प्रवर्ग है जिन्होंने हत्या जैसे साधारण अपराधों के लिए मृत्युशास्ति समाप्त कर दी है और सैनिक विधि के अधीन अपराध और आपवादिक परिस्थितियों के अधीन अपराध जैसे आपवादिक अपराध के लिए इसे प्रतिधारित किया है ।[12] मृत्युदंड पर भारत के विधि आयोग की 35वीं रिपोर्ट के काफी पश्चात् 1976 से दंड के रूप में मृत्युशास्ति की अंतरराष्ट्रीय गिरावट शुरू हुई । मृत्युदंड किए जाने और मृत्युदंड की पूर्व रिपोर्ट के पश्चात् विश्वव्यापी व्यापक उत्सादन से संबंधित मुद्दों पर विचार करने और विस्तृत परीक्षा करने की अपेक्षा

या. (दां.) सं. 55/3013-शत्रुघ्न चौहान ब. भारत संघ और न्य, रि. या. (दां.) सं. 56/2013 - पीयूडीआर ब. भारत संघ और अन्य, रि. या. (दां.) सं. 132-सुरेश और रामजी ब. भारत संघ और अन्य, रि. या. (दां.) सं. 136/2013 - पीयूडीआर ब. भारत संघ और अन्य, रि. या. (दां.) सं. 139/2013 - शिवु ब. भारत संघ और अन्य, रि. या. (दां.) सं. 141/2013 - जदेस्वामी ब. भारत संघ और अन्य, रि. या. (दां.) सं. 187/2013 - प्रवीण कुमार ब. भारत संघ और अन्य, सं. 188/2013 - सोनिया सुरेश कुमार और संजीव अनूप कुमार ब. भारत संघ और अन्य, रि. या. (दां.) सं. 193/2013 - गुरमीत सिंह ब. भारत संघ और अन्य, रि. या. (दां.) सं. 190/2013- जफर अली ब. भारत संघ और अन्य, रि. या. (दां.) सं. 191/2013- मगनलाल बरेला ब. भारत संघ और अन्य, रि. या. (दां.) सं. 192/2013-पीयूडीआर ब. भारत संघ और अन्य ; में मृत्युदंड के पन्द्रह दोषसिद्ध व्यक्तियों का दंड कम कर आजीवन कारावास में परिवर्तित किया ।

[12] http://www.amnesty.org/en/death-penalty/abolitionist-and-retentionist-countries. पर उपलब्ध मृत्युशास्ति से संबंधित आंकड़ों के अनुसार

Archive

है । यहां यह उल्लेख करना श्रेयस्कर है कि एस बनाम मैकवानयाने और एक अन्य[13] वाले मामले में संविधान न्यायालय के विनिश्चय के द्वारा दक्षिणी अफ्रीका में मृत्युशास्ति उत्सादित की गई ।

फिर भी, निवारण, प्रतिशोध, अपराध के विवरण, दंडात्मक प्रणाली, मृत्युदंड के अनुकल्प, आदि के संबंध में विधि आयोग द्वारा निकाले गए कई निष्कर्ष पुराने हो गए हैं । ये विषय काफी अधिक हैं और कठिन शैक्षिक कार्य अनिवार्य है और नए सिरे से विचार करने की आवश्यकता है (इस विषय पर प्रारंभिक चर्चा के लिए मृत्युशास्ति पर वर्तमान अनुसंधान की स्थिति – भाग 5 देखें)

2. 187वीं रिपोर्ट (2003)

यद्यपि विधि आयोग ने वर्ष 2003 में "मृत्युदंड के निष्पादन का ढंग और आनुषंगिक मामले" के सीमित मुद्दे पर अपनी 187वीं रिपोर्ट प्रस्तुत की[14], फिर भी दंड के रूप में मृत्युशास्ति की वांछनीयता का सारवान प्रश्न इस रिपोर्ट के निबंधनों का भाग नहीं था और तदनुसार विधि आयोग ने इस विषय पर कोई मत व्यक्त नहीं किया । मृत्युदंड पर 35वीं रिपोर्ट में, आयोग ने लटकाकर फांसी देने की तरीके में परिवर्तन करने की सिफारिश नहीं की और यह मत व्यक्त किया कि "बेहोश करने के विज्ञान में प्रगति और अन्य देशों के विभिन्न तरीकों का अतिरिक्त अध्ययन तथा एकत्र किया गया अनुभव और विद्यमान तरीकों का विकास और परिशोधन भविष्य में संभवतः इस विवादास्पद विषय पर निष्कर्ष निकालने का ठोस आधार प्रस्तुत करेगा ।" आयोग द्वारा स्वप्रेरणा से विज्ञान, औषधि और श्वास विज्ञान के क्षेत्र में तकनीकी वृद्धि को ध्यान में रखते हुए वर्ष 2003 में इस 187वीं रिपोर्ट पर विचार किया गया था । उन वर्षों की संख्या जो आयोग द्वारा मृत्युदंड के विषय पर अंतिम बार विचार करने के पश्चात् बीत गए, को ध्यान में रखते हुए, मृत्युशास्ति से संबंधित इन मूल प्रश्नों पर नए सिरे से विचार करना और

---

[13] (सीसीटी 3/94)

[14] विधि आयोग की रिपोर्ट विधि आयोग की बेवसाइट lci-dla@nic.in पर उपलब्ध है

Archived

इन कई विषयों पर प्रचुर और नवीनतम उभरते हुए वैज्ञानिक, शैक्षिक और न्यायिक राय बनाना विधि आयोग के लिए अनिवार्य है ।

पूर्वोक्त पृष्ठभूमि के विपरीत, यह स्पष्ट है कि मृत्युशास्ति का मुद्दा आधुनिक आपराधिक न्याय प्रणाली में इसका स्थान, इसके अनुकल्प और शास्ति को प्रतिधारित करने में निहित सामाजिक विधिक लागत पर तत्काल परीक्षा करने की आवश्यकता है । मस्तिष्क में इस लक्ष्य के साथ, यह परामर्श पत्र मृत्युशास्ति के क्षेत्र में विकास का विहंगम अवलोकन प्रस्तुत करता है ।

भाग 3. मृत्युशास्ति विधियों का विस्तार

1. कानूनी उपबंध

भारतीय दंड संहिता कई अपराधों के लिए मृत्युशास्ति विहित करती है । भारतीय दंड संहिता के अधीन मृत्यु के दंडादेश द्वारा दंडनीय कुछ अपराध राजद्रोह (धारा 121) विप्लव का दुष्प्रेरण (धारा 132), मिथ्या शपथ जिसके परिणामस्वरूप निर्दोष व्यक्ति की दोषसिद्धि और मृत्यु हो (धारा 194), किसी व्यक्ति को मिथ्या साक्ष्य देने के लिए धमकाना या उत्प्रेरित करना जिसके परिणामस्वरूप निर्दोष व्यक्ति की दोषसिद्धि और मृत्यु हो (धारा 195), हत्या (धारा 302), फिरौती के लिए व्यपहरण (धारा 364क) और हत्या के साथ डकैती (धारा 396) हैं । इन अपराधों में से धारा 302 के लिए सामान्य रूप से मृत्युशास्ति का अधिकांशतः उपयोग किया जाता है ।

इसके अतिरिक्त, वायु सेना अधिनियम, 1950 सेना अधिनियम, 1950 नौसेना अधिनियम, 1950, सती (निवारण) अधिनियम, 1987 [धारा 4(1)] अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989, [धारा 3(2)(i)] विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908 [धारा 3 (ख)] विधि विरुद्ध क्रियाकलाप निवारण अधिनियम, 1967 (धारा 16(1) जैसे कई अन्य विशेष विधानों में भी मृत्युशास्ति दी जाती है ।

2. बलात्संग के लिए मृत्युशास्ति का दिया जाना

Archived

दिसम्बर, 2012 में, वीभत्स सामूहिक बलात्संग और घातक हमला जिसके परिणामस्वरूप राजधानी शहर में 23 वर्षीय चिकित्सा छात्र की मृत्यु जिससे मीडिया की सुर्खियों और आम जनता में महिलाओं द्वारा झेली जा रही व्याप्त लैंगिक हिंसा का मुद्दा उभर कर सामने आया । दुखद सामाजिक बलात्संग मामला जिसे निर्भया बलात्संग मामला कहा गया, ने शहर में स्वतः सामूहिक विरोध प्रदर्शनों को जन्म दिया । महिलाओं की सुरक्षा का मुद्दा मीडिया रिपोर्टों और टेलीविजन वाद-विवादों में काफी समय से प्रमुखता से छाया रहा । भारत सरकार ने भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति न्यायमूर्ति जे. एस. वर्मा की अध्यक्षता और न्यायमूर्ति लीला सेठ और श्री गोपाल सुब्रमणियम, वरिष्ठ अधिवक्ता जो समिति के अन्य सदस्य थे, से मिलकर बनी तीन सदस्यीय समिति द्वारा इस उच्च तीव्र विरोध और अनवरत मीडिया अभियान का उत्तर दिया गया । समिति ने यह सिफारिश की कि महिलाओं के विरुद्ध अत्यधिक कठोर प्रकृति का लैंगिक हमला करने वाले अपराधियों के लिए शीघ्र विचारण और दंड बढ़ाने हेतु संशोधन किया जाए ।

समिति ने अपने गठन के एक मास के भीतर ही अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की[15] । समिति को उसकी सिफारिशों की व्यापक व्याप्ति के लिए सार्वभौमिक प्रशंसा प्राप्त हुई जो सिविल सोसाइटी और अन्य पणाधारियों से व्यापक परामर्शों के आधार पर तैयार की गई थीं ।

दंड देने के संबंध में, समिति ने यह मत व्यक्त किया कि लैंगिक अपराधों को दो प्रवर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है – (i) अवधि दंडादेश और (ii) आजीवन कारावास । गुरुतर लैंगिक हमले हेतु दंड बढ़ाने के लिए पृथक उपबंध के अंतःस्थापन की सिफारिश करते हुए, समिति ने यह उल्लेख किया कि समाज के व्यापक हित में और मृत्युशास्ति के उत्सादन के पक्ष में वर्तमान सोच को ध्यान में रखते हुए और मनमाना ढंग से दंडादेश देने के किसी तर्क से बचने के लिए, हम मृत्युशास्ति की भी सिफारिश नहीं करना चाहते ।" समिति ने आगे यह उल्लेख किया कि यद्यपि बलात्संग एक जघन्य अपराध है और जीवन

---

[15] समिति की रिपोर्ट lawcommissionofindia.nic.in/reports/187threport.pdf. उपलब्ध है ।

का परम अतिक्रमण है फिर भी, ऐसे उदाहरण हैं जहां पीड़ित/उत्तरजीवी समाज के कुछ समर्थन से सामान्य जीवन बिता सकता है और मानसिक आघात पर विजय पर सकता है । समिति ने यह उल्लेख किया कि 'दूसरे शब्दों में, हम यह नहीं कहते कि ऐसी स्थिति कम नैतिक भ्रष्टता का है किन्तु व्यक्ति को हुई क्षति की मात्रा काफी कम हो सकती है और मृत्युदंड की अपेक्षा नहीं करती ।'

सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा, सार्वभौमिक मानव अधिकार घोषणा, बाल अधिकार कन्वेंशन, यातना और अन्य क्रूर अमानवीय और अपमानजनक बर्ताव या दंड के विरुद्ध कन्वेशन और अन्य अन्तरराष्ट्रीय कन्वेशनों के उपबंधों पर विचार करते हुए, समिति ने यह उल्लेख किया कि मृत्युशास्ति का उत्सादन और कानूनी पुस्तकों में ऐसे अपराधों की संख्या की कमी जो मृत्युदंड को अधिसूचित करते हैं को अन्तरराष्ट्रीय पारम्परिक विधि का भाग कहा जाता है । यह विचार करते हुए कि पूरे विश्व में, 150 से अधिक देशों ने मृत्युशास्ति समाप्त कर दी है या मृत्युशास्ति को नहीं अपनाते, समिति ने कोकर बनाम जर्जिया[16] वाले मामले में यूनाइटेड स्टेट के उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर ध्यान दिया जिसमें यू. एस उच्चतम न्यायालय ने ऐसे दोषसिद्ध महापराधी के मृत्युदंड को अभिखंडित कर दिया जिसने गुरुतर लैंगिक हमला किया था और यह अभिनिर्धारित किया कि बलात्संग के लिए मृत्युदंड अननुपात्तिक है, यू. एस. संविधान के 8वें और 14वें संशोधनों का अतिक्रमण करता है और ''बर्बरतापूर्ण और दमनकारी'' भी है । लैंगिक अपराधों के लिए मृत्युदंड पर अपने निष्कर्ष में, समिति ने अभिनिर्धारित किया :

> ''37. इस प्रकार, एक ऐसा ठोस मामला जो हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है, यह है कि भारत में अंतरराष्ट्रीय विधि और अमेरिकी न्यायालयों में यथाव्याख्यायित विधि के संदर्भ में, बलात्संग के लिए उस मामले में भी जहां ऐसा दंड विरल से विरलतम मामलों तक निर्बंधित है, मृत्युशास्ति लागू करना अधोगामी कदम होगा । यह भी कहा गया है कि ऐसा पर्याप्त साक्ष्य है कि गंभीर अपराधों पर मृत्युशास्ति का निवारक प्रभाव

[16] 433 यूएस 584

> वास्तव में एक मिथक है । मानव अधिकारों के कार्यकारी समूह के अनुसार, 1980 से मृत्युदंड के निष्पादन में कमी के बावजूद पिछले 20 वर्षों से लगातार भारत में हत्या दर में कमी आई है । अतः, हम इस तर्क पर ध्यान देते हैं कि बलात्संग के लिए मृत्युशास्ति लागू किए जाने से निवारक प्रभाव नहीं हो सकता है । तथापि, हमने शेष जीवन को महत्व देते हुए दंड को बढ़ाया है ।''

यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि समिति ने लैंगिक अपराधों के लिए मृत्युदंड की सिफारिश नहीं की । समिति ने बारंबार अपराधियों के लिए दंड के रूप में ''दोषसिद्ध व्यक्ति के नैसर्गिक जीवन के शेष अवधि के लिए आजीवन कारावास'' की प्रस्थापना की ।

वर्मा समिति की सिफारिशों का अनुसरण करते हुए, भारत सरकार ने 2.4.2013 को संशोधनकारी अधिनियम अधिनियमित किया । अन्य उपबंधों में से भारतीय दंड संहिता की पहले से ही विद्यमान धारा 354 में चार नई धाराएं अर्थात् 354क, 354ख, 354ग और 354घ का अंतस्थापन संशोधन द्वारा किया गया जो स्त्री की लज्जा भंग करने के आशय से उस पर हमला या आपराधिक बल के प्रयोग के बारे में है । संशोधन ने धारा 375 में बलात्संग के अर्थ को भी विस्तारित किया । इसके अतिरिक्त, संशोधन द्वारा बलात्संग के दोबारा अपराध के मामलों के लिए धारा 376ङ में दंड के रूप में मृत्युशास्ति लागू की गई है । यह विचार उभरता है कि वर्मा समिति ने सुस्पष्टतः बलात्संग के अपराध के लिए मृत्युदंड के विरुद्ध सिफारिश की ।

यह उल्लेखनीय है कि धारा 376ङ का पहले ही मुंबई में शक्ति मिल सामूहिक बलात्संग वाले मामले में विचारण न्यायालय द्वारा तीन व्यक्तियों को मृत्युदंड देने हेतु अवलंब लिया गया है ।

भाग IV. भारत में मृत्युशास्ति के साम्प्रतिक प्रशासन पर न्यायिक टिप्पणी

मृत्युदंड की संवैधानिकता के प्रश्न पर विचार करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने बच्चन सिंह वाले मामले में मृत्युशास्ति को अपना एक स्वतंत्र प्रवर्ग माना । किन्तु न्यायालय ने बच्चन सिंह वाले मामले में ही

Archived

इस तथ्य पर ध्यान दिया कि दंड के रूप में मृत्युशास्ति राज्यपाल और भारत के राष्ट्रपति की दया शक्तियों पर अनुच्छेद में संविधान में उल्लेख है । इसके अतिरिक्त न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 354(3) मृत्युशास्ति पर सम्यक् प्रक्रिया अवसंरचना का भाग है । इस बाबत, न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :

> "209. लघुतर दंड पारित करने को न्यायोचित ठहराने वाली कई अन्य परिस्थितियां हैं, और अन्य गुरुतरकारी परिस्थितियां भी हैं । "सुस्पष्टतः हम ऐसी सभी स्थितियों को न्यायिक कम्प्यूटर में फीड नहीं कर सकते चूंकि वे अपूर्ण और अस्थित समाज में खगोलीय संभाव्यताएं हैं ।" फिर भी, इस बात पर अधिक बल नहीं दिया जा सकता कि मृत्युशास्ति के क्षेत्र में उपशमनकारी कारकों की व्याप्ति और अवधारणा को धारा 354(3) में व्यक्त दंड देने की नीति के अनुकूल न्यायालयों द्वारा उदारतापूर्ण और व्यापक अर्थान्वयन किया जाना चाहिए । न्यायाधीशों को भी रक्तपिपासु नहीं चाहिए । हत्यारों को फांसी पर लटकाया जाना उनके लिए कभी इतना अच्छा नहीं रहा है । भारत संघ द्वारा प्रस्तुत तथ्य और आंकड़े यद्यपि अपूर्ण हैं, फिर भी यह दर्शाते हैं कि पूर्वकाल में, न्यायालयों ने ही बहुत विरले ही परम शास्ति अधिरोपित की – ऐसा एक तथ्य है जो सतर्कता और संवेदना का प्रमाण देता है जो वे ऐसे कठोर मामले में दंड देने में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय ध्यान में रखते थे । अतः, यह चिन्ता जाहिर करना अनिवार्य है कि न्यायालय हमारे द्वारा उपदर्शित व्यापक निदर्शी मार्गदर्शक सिद्धांतों की सहायता से और अधिक ईमानदारी से तथा मानवीय चिंता के साथ और धारा 354(3) में रेखांकित विधायी नीति के उच्च आदर्श के साथ अर्थात् यह कि हत्या के दोषसिद्ध व्यक्तियों के लिए आजीवन कारावास एक नियम है और मृत्युदंड अपवाद, दुर्भर कृत्य का निर्वहन करेंगे । मानव जीवन की गरिमा की वास्तविक और टिकाउ, चिन्ता विधि की सहायता से प्राण लेने का विरोध करना है । यह विरल से विरलतम मामलों के सिवाय नहीं किया जाना चाहिए जब अनुकल्पी विकल्प सुस्पष्टतः वर्जित

हो गया हो । [बल देने के लिए रेखांकन किया गया]

ऐसे सभी मामलों में जहां न्यायालय मृत्युदंड अधिनिर्णीत करते हैं, कठोर कसौटी पूरा किए जाने के रूप में "विरल से विरलतम" मानक की प्रतिपादना करना दंड के रूप में मृत्युशास्ति की अवधारणा है जो दंड प्रयोजन के लिए प्राण के आत्यंतिक निंदा के रूप में अद्भूत है । अपने निजी लीग में मृत्युशास्ति के इस लक्षण के भाग के रूप में, इस देश के न्यायालय ने यथाविद्यमान अपराध विधि के लिए एक सर्वाधिक अपेक्षित और अकाटय सिद्धांत का आविष्कार किया । "विरल से विरलतम" उक्ति का उद्भव भारत में मृत्युशास्ति के संवैधानिक विनियमन का आरंभ ही था ।

पिछले दशक में, उच्चतम न्यायालय ने कई बार मृत्युशास्ति के संवैधानिक विनियमन प्रकरण पर पुनर्विचार किया । इस बाबत उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियां मृत्युशास्ति के मुद्दे पर विचार करने में न्यायालय द्वारा महसूस की गई चिन्ता की मात्रा उपदर्शित करती है ।

1. मृत्युशास्ति का दंड देने में असंगतता और मनमानापन

कई अवसरों पर, न्यायालय ने यह इंगित किया कि बच्चन सिंह वाले मामले में प्रतिपादित विरल से विरलतम उक्ति का उपयोग न्यायालयों द्वारा लगातार किया जाता रहता है । वरियार वाले मामले में, न्यायालय ने इस बाबत अभिनिर्धारित किया कि कम से कम यह कह सकते हैं कि पूर्वनिर्णयों में कोई एकरूपता नहीं है । अधिकांश मामलों में, कोई विधिक सिद्धांत अधिकथित किए बिना मृत्युशास्ति की पुष्टि की गई या हमारे द्वारा पुष्ट किए जाने से इनकार किया गया ।"

न्यायालय ने स्वामी श्रद्धानंद (2)[17] वाले मामले के विनिश्चय का अवलंब लिया जिसमें न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :

> "51. असलियत यह है कि मृत्युशास्ति का प्रश्न व्यक्तिनिष्ठ तत्व से मुक्त नहीं है और मृत्युदंड की पुष्टि और इस न्यायालय द्वारा इसका लघूकरण काफी हद तक न्यायपीठ गठित करने

[17] (2008) 13 एससीसी 767

> वाले न्यायाधीश की व्यक्तिगत अभिरूचि पर आधारित है ।
>
> 52. सभी मुख्य अपराधों पर विचार करने के लिए समानतः प्रभावी आपराधिक न्याय प्रणाली की असमर्थता और न्यायालय द्वारा दंड देने की प्रक्रिया में एकरूपता की कमी अंतिम परिणाम में काफी असंतुलन पैदा करता है । एक ओर, ऐसे थोड़े मामले प्रतीत होते हैं जिसमें हत्या से दोषसिद्ध व्यक्ति को इस न्यायालय द्वारा उसकी मृत्युशास्ति की पुष्टि पर फांसी का फंदा लगाने के लिए भेजा जाता है और दूसरी ओर, ऐसे मामलों का क्षेत्र काफी अधिक है जिसमें समरूप या काफी अधिक क्रान्तिकारी तरह की हत्या करने वाले अपराधी को दंड देने में न्यायालय द्वारा असंगतता की कमी के कारण उसका अपना प्राण बच जाता है या बुरी स्थिति में अपराधी आपराधिक न्याय प्रणाली की खामियों के कारण अदंडित जाने दिया जाता है । इस प्रकार, समग्र स्थिति विषम और असंतुलित हो जाती है जो आपराधिक न्याय प्रशासन की प्रणाली का बुरा प्रतिविम्बन प्रस्तुत करता है । इस न्यायालय के लिए यह स्थिति चिंता का विषय है और उपचार किए जाने की आवश्यकता है ।"

न्यायालय ने आगे यह मत व्यक्त किया कि शिक्षाविद और न्यायालयों ने पहले ही मृत्युशास्ति की व्यक्तिनिष्ठता के मुद्दे पर विचार किया । इस बाबत, न्यायालय ने एमनेस्टी इन्टरनेशनल और पीपुल्स यूनियन फार सिविल लिबर्टी द्वारा "प्राणघातक लाटरी" भारत में मृत्युशास्ति 1950-2006, मृत्युशास्ति मामलों में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों का अध्ययन"[18] शीर्षक से संयुक्त रिपोर्ट का प्रतिनिर्देश किया । न्यायालय ने आगे यह मत व्यक्त किया :

> "निरापद रूप से यह कहा जा सकता है कि "विरल से विरलतम मामलों" की प्रतिपादना करने वाले बच्चन सिंह [(1980) 2 एससीसी 684] वाले मामले का उपयोग सर्वाधिक परिवर्तित और संगत रूप से विभिन्न उच्च न्यायालयों और इस न्यायालय द्वारा भी किया जाता रहा है ।"

---

[18] अध्ययन http://www.amnesty.org/en/library/info/ASA20/007/2008. पर उपलब्ध है ।

Archived

संगीत और एक अन्य बनाम हरियाणा राज्य[19] वाले मामले में, न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि ''यह प्रतीत होता है कि संभाव्यताओं की अंतनिर्हित अनेकता को ध्यान में रखते हुए गुरुतरकारी और उपशमनकारी परिस्थितियों के सोच को प्रभावी रूप से लागू नहीं किया जा रहा है ।'' न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :

> ''33. अतः, हमारी यह विचारित राय है कि न केवल गुरुतरकारी और उपशमनकारी परिस्थिति सोच पर नए सिरे से विचार करने की आवश्यकता है बल्कि बच्चन सिंह [(1980) 2 एससीसी 684] वाले मामले के निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए इस सोच को स्वीकार करने की आवश्यकता पर भी निए सिरे से विचार करने की आवश्यकता है । हमें यह प्रतीत होता है कि यद्यपि बच्चन सिंह [(1980) 2 एससीसी 684] का आशय ''सैद्धांतिक दंड देना'' था किन्तु अब दंड देना वास्तव में न्यायाधीश केन्द्रित हो गया है जैसा स्वामी श्रद्धानंद [(2008) 13 एससीसी 767] और बरियार [(2009) 6 एससी 498] वाले मामले में उजागर किया गया है । बच्चन सिंह [(1980) 2 एससीसी 684] वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा लागू फेज 2 के दंड देने की नीति का यह पहलू संक्रमण काल में खो गया प्रतीत होता है ।

2. मृत्युशास्ति दंडादिष्ट करने में मनमानेपन से उद्भूत संवैधानिक जटिलताएं

न्यायालय ने मृत्युशास्ति विधि के विषम उपयोग से उद्भूत मूल अधिकार जटिलताओं पर विस्तार से टिप्पणी की । बरियार वाले मामले में, न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :

> ''54. स्वामी श्रद्धानंद (2) बनाम कर्नाटक राज्य [2008) 13

---

[19] (2013) 3 एससीसी 452

Archived

एससीसी 767] वाले मामले में न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि मृत्युदंड अधिनिर्णीत करना "काफी हद तक न्यायपीठ गठित करने वाले न्यायाधीशों की व्यक्तिगत अभिरुचि पर निर्भर करता है ।" यह इस न्यायालय की ओर से एक गंभीर स्वीकृति है । जहां तक इस पहलू पर विचार किया जाता है, इस बात में असंगतता है कि कैसे बच्चन सिंह [(1980) 2 एससीसी 684] को लागू किया गया है क्योंकि बच्चन [(1980) 2 एससीसी 684] सिंह वाले में सैद्धांतिक दंड देने का अधिदेश दिया गया है न कि न्यायाधीश केन्द्रित दंड देने की व्यवस्था । बहस के दो पक्ष हैं । यह स्वीकार किया गया है कि विरल से विरलतम मामले का अवधारण उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में किया जाना चाहिए और उस प्रयोजन का कोई कठोर सिद्धांत नहीं है । कोई कठोर मार्गदर्शक सिद्धांत नहीं है । किन्तु दंड देने की प्रक्रिया का सुझाव दिया गया है । यह प्रक्रिया सुरक्षोपाय प्रकृति की है और विरल से विरलतम उक्ति का आलिंगन किया गया है । अतः, इसे अनुच्छेद 21 और 14 के साथ पढ़ा जाना चाहिए ।

...127. धारा 302 के अधीन दंड देने में मनमानेपन से संबंधित प्रायः निष्कर्ष अनुच्छेद 14 में निहित समान संरक्षण खंड के विचार का अतिक्रमण करता है और अनुच्छेद 21 के अधीन सम्यक् प्रक्रिया अपेक्षाओं को भी विकृत करता है ।

128. यह उल्लेखनीय है कि हम इस बात पर फोकस नहीं डाल रहे है कि क्या धरा 302 के अधीन आजीवन कारावास और मृत्युदंड के बीच चुनने का व्यापक विवेकाधिकर संवैधानिकतः अनुज्ञेय है या नहीं । जांच का विषय-वस्तु यह है कि कैसे धारा 302 के अधीन विवेकाधिकार का परिणाम वास्तविक दंड देने में मनमाना हो सकता है । बच्चन सिंह [(1980) 2 एससीसी 684] द्वारा यथा अभिनिर्धारित धारा 302 विधि का उदाहरण नहीं है जो इसके देखने से मनमाना लगता है किन्तु ऐसा दृष्टांत है जहां मनमाने ढंग से प्रशासित किया जा सकता है ।

Archived

....130. अनुच्छेद 14 के अधीन अनुप्राणित समान संरक्षण खंड का उपयोग दंड देने के प्रक्रम पर न्यायिक प्रक्रिया को लागू होता है । हम स्वामी श्रद्धांनंद (2) वाले मामले में न्यायालय के बेचैन और अशांत भाव के सहभागी है और सहमत हैं कि मृत्यु दंडात्मक प्रणाली जिसका परिणाम समान स्थित मृत्युदंड से दोषसिद्ध व्यक्तियों के प्रति भिन्न बर्ताव में होता है जो प्रभावतः अनुच्छेद 21 के प्राण के उनके अधिकार के संबंध में समरूप दोषसिद्ध व्यक्तियों को भिन्नतः वर्गीकृत करता है । अतः, इस समस्या का समान संरक्षण विश्लेषण समुचित है । अंतिम विश्लेषण के रूप में, यह अलार्म घंटी का ही प्रयोजन पूरा करता है क्योंकि यदि मृत्युदंडों को ऐसे मामलों से तार्कितः भिन्न नहीं किया जा सकता हो जहां आजीवन कारावास को दंड दिया गया हो तो यह अनुचित दंड देने की प्रणाली की अभिस्वीकृति से काफी अधिक है । मृत्युदंड देने वाली प्रणाली में यदि यह कुछ बारंबार होता है तो मृत्युदंड देने वाली प्रणाली के संवैधानिकतः मनमाना होने के संबंध में यह छिपा निष्कर्ष है । इस प्रकार, हमें सतर्क होना होगा कि विरल से विरलतम सिद्धांत का सही आशय असाधारण और आपवादिक मामले का उल्लेख करता है ।

3. मृत्युशास्ति मामलों में होने वाली न्याय की अवलेहना

एक से अधिक अवसरों पर, उच्चतम न्यायालय ने मृत्युशास्ति के मामलों में न्याय की अवहेलना को भी उजागर किया । बरियार वाले मामले में न्यायालय ने ऐसे सामूहिक मामलों में मृत्युशास्ति विधि के घोर दुरुपयोजन को इंगित किया जिसमें बच्चन सिंह वाले मामले में अधिदिष्ट नियत कसौटी का पालन किए बिना मृत्युदंड के अधिनिर्णय दिए गए थे ।

बरियार वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने रावजी वाले मामले को बच्चन सिंह वाले संविधान न्यायपीठ विनिश्चय को अनवधानता के कारण दिया विनिश्चय अभिनिर्धारित किया । न्यायालय ने इस बाबत यह अभिनिर्धारित किया :

"61. इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि मामला विरल से विरलतम

प्रवर्ग के अंतर्गत आता है, पृष्ठभूमि विश्लेषण न्यायिक संकीर्णवाद और संपूर्णता के सर्वोच्च मानक के अनुरूप होना चाहिए क्योंकि विश्लेषणाधीन मानक आपवादिकतः संकीर्ण अपवाद है । किसी विषय की बाबत विरल से विरलतम पहलू से संबंधित निष्कर्ष अपराध और अपराधी दोनों से संबंधित गुरुतरकारी और उपशमनकारी परिस्थितियों की पहचान पर निर्भर होगा । इस संदर्भ में यह उल्लेख किया गया : (बच्चन सिंह वाला मामला एससीसी पृष्ठ 738, पैरा 161)

> "161. .... इस उपबंध के संदर्भ में "विशेष कारण" पद का सुस्पष्टतः अर्थ अपराध और अपराधी से संबंधित विशिष्ट मामले की आपवादिकतः गंभीर परिस्थितियों पर आधारित "आपवादिक कारण" है । (बल दिया गया ।)

62. असाधारणतः, रावजी बनाम राजस्थान राज्य वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह अपराध से संबधित बातों को अपवर्जित करते हुए अपराध से संबंधित केवल ऐसे लक्षण है जो आपराधिक विचारण में दंड देने के लिए सुसंगत है : (एससीसी पृष्ठ 187, पैरा 24)

> "24.... अपराध सुविचारित रीति से किसी प्रकोपन के बिना आत्यंतिक क्रूरता और बर्बरता से किए गए थे । यह अपराध की प्रकृति और गुरुत्व है न कि अपराधी की, जो किसी आपराधिक विचारण में समुचित दंड के विचार का आधार है । न्यायालय अपना कर्तव्य करने में असफल हो जाएंगे यदि ऐसे अपराध के लिए समुचित दंड अधिनिर्णीत नहीं किया जाता जो न केवल व्यक्तिगत पीड़ित के विरुद्ध किया गया है बल्कि ऐसे समाज के विरुद्ध भी किया गया है जिसके अपराधी और पीड़ित सदस्य हैं । अपराध के लिए अधिनिर्णीत किया जाने वाला दंड असंगत नहीं होना चाहिए बल्कि यह अत्याचार और बर्बरता के अनुरूप और उससे संगत होना चाहिए जिस उद्देश्य से अपराध किया गया है ; आम जनता की घृणा को आश्वस्त करने वाले अपराध की घोरता और इसे "अपराधी के विरुद्ध न्याय के लिए समाज की पुकार का प्रत्युत्तर देने वाला होना चाहिए ।"

Archived

63. हम यह नहीं भूल पाए हैं कि राव जी वाले मामले का अनुसरण इस न्यायालय के कम से कम छह विनिश्चयों में किया गया है जिसमें मृत्युदंड पिछले नौ वर्षों में अधिनिर्णीत किए गए हैं, किन्तु हमारी राय में, यह अनवधानता के कारण दिया गया था । इस बिन्दु पर बच्चन सिंह वाले मामले में विशेष रूप से इस प्रकार उल्लेख किया गया है (एससीसी पृष्ठ 739, पैरा 163)

> "163.... धारा 354(3) के साथ पठित धारा 235(2) से ज्ञेय वर्तमान विधायी नीति यह है कि दंड की मात्रा नियत करने या दंड संहिता की धारा 302 के अधीन एक अपराध सहित विभिन्न अपराधों के लिए दंडादेश का विकल्प चुनने में, न्यायालय को अपना विचार 'मुख्यतः' या मात्र विशिष्ट अपराध से जुड़ी परिस्थितियों तक सीमित नहीं रखना चाहिए बल्कि अपराधी की परिस्थितियों पर भी सम्यक् विचार करना चाहिए ।"

इसके अतिरिक्त, न्यायालय ने बरियार वाले मामले में भी उच्चतम न्यायालय के ऐसे 6 विनिश्चयों को इंगित किया जहां अनवधानता के कारण राव जी वाले मामले में तर्क प्रतिपादित किए गए थे ।

बरियार वाले मामले से अब तक उच्चतम न्यायालय ने कई अवसरों पर यह स्वीकार किया कि राव जी वाला मामले का निर्णय बच्चन सिंह वाले के अनवधानता के कारण दिया गया । न्यायालय ने दिलीप तिवारी बनाम महाराष्ट्र राज्य[20] वाले (पैरा 67-68), राजेश कुमार बनाम राज्य[21] (पैरा 66-70), संगीत बनाम हरियाणा राज्य[22] (पैरा 37), मोहिन्दर बनाम पंजाब राज्य[23] (पैरा 373) वाले मामलों में यह मत व्यक्त किया कि रावजी वाले मामले के आवद्धकारी अवलंबन से न्यायालयों द्वारा दंड देने में काफी गलतिया हुईं । इन मामलों में न्यायालय द्वारा एक भी उपशमनकारी परिस्थिति पर विचार नहीं किया गया और केवल गुरुतरकारी पहलुओं पर बल दिया गया जो बच्चन सिंह वाले मामले में

---

[20] (2010) 1 एससीसी 775

[21] (2011) 13 एससीसी 706

[22] (2013) 2 एससीसी 452

[23] (2013) 3 एससीसी 294.

Archived

संविधान न्यायपीठ विनिश्चय का स्पष्ट अतिक्रमण है । यह भी उल्लेख करना अपरिहार्य है कि 14 भूतपूर्व न्यायाधीशों ने इन 13 दोषसिद्ध व्यक्तियों के मृत्युदंड को लघूकृत करने के लिए उनके शीघ्र हस्तक्षेप की मांग करते हुए भारत के राष्ट्रपति को अपील की जिन्हें रावजी[24] वाले मामले के पूर्वनिर्णय का अनवधानता के कारण अवलंब लेने से मृत्युदंड से दंडादिष्ट किया गया । इस पत्र में, यह भी इंगित किया गया कि दो कैदी जिन्हें गलत ढंग से मृत्युदंड दिया गया था, रावजी राव और सुरजा राम (दोनों राजस्थान के थे) को पहले ही त्रुटिपूर्ण निर्णयों के अनुसरण में क्रमशः 4 मई, 1996 और 7 मई, 1997 को फांसी दे दी गई । अपील पत्र में इसे स्वतंत्र भारत में अपराध और दंड के इतिहास में न्याय की कठोर ज्ञात अवहेलना गठित करने वाला बताया गया ।

4. बर्बर अपराध में दंड देने में पक्षपात

ओम प्रकाश बनाम हरियाणा राज्य[25] वाले मामले में, न्यायमूर्ति थामस ने "समाज की पुकार" का प्रत्युत्तर देने और "गुरुत्तरकारी और उपशमनकारी परिस्थितियों" का संतुलन करने वाली बच्चन सिंह की उक्ति को पूरा करने के बीच प्रकट तनाव पर विचार किया । न्यायालय का यह मत था कि दंड देने वाला न्यायालय बच्चन सिंह द्वारा आबद्ध है न कि समाज के असंगत और अस्थिर उत्तरों के विनिर्दिष्ट निबंधनों से ।

"राजेश कुमार बनाम राज्य, दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र सरकार के द्वारा[26] वाले मामले में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :

> "75. दूसरी ओर, गंभीर कारक परिस्थितियों पर विचार करते हुए, उच्च न्यायालय अपराध करने की रीति में बर्बरता से सारतः प्रभावित प्रतीत होता है । निस्संदेह यह सही है कि इस मामले में हत्या बहुत बर्बरतापूर्वक और अमानवीय ढंग से की गई थी,

---

[24] वी. वेकटेशन, 'मृत्युशास्ति के विरुद्ध एक मामला' 29(17),फ्रंटलाइन (25 अगस्त-7 सितम्बर 2012) http://www.frontline.in/navigation/?type=static&page=flonnet&rdurl=fl2917/stories/20120907291700400.htm. पर उपलब्ध है ।

[25] (1999) 3 एससीसी 19

[26] (2011) 13 एससीसी 706

Archived

किन्तु अकेले यही मृत्युशास्ति अधिरोपित किए जाने को न्यायोचित नहीं ठहरा सकता । इस न्यायालय के कई विनिश्चयों में यह अभिनिर्धारित किया गया है ''

बरियार वाले मामले में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया ''यह कि न्यायालयों में मृत्युदंड वाले मामलों में एकमात्र औचित्य के रूप में 'सामाजिक आवश्यकता' के उपयोग पर एकमत नहीं है ।'' न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया :

''2(ई) जघन्य अपराधों में दंड देने का औचित्य

71. मृत्युदंड के संदर्भ में सामान्यतः और अधिक विनिर्दिष्टतः यह मत व्यक्त किया गया है कि दंड देना बर्बर और जघन्य प्रकृति के अपराधों, की सबसे बड़ी दुर्घटना है । हमारा मृत्युदंड देने का न्यायशास्त्र इस अर्थ में दुर्बल है कि गुरुतरकारी और उपशमनकारी परिस्थितियों पर बहुत अत्यल्प वस्तुनिष्ठ चर्चा होती है । अधिकांश ऐसे मामलों में, न्यायालय केवल अपराध सूची की बर्बरता पर विचार कर रहे हैं । ऐसे अन्य कारक हो सकते हैं जिन्हें अभिलिखित नहीं किया जाता है ।

72. इस संदर्भ में, हमें यह भी इंगित करना चाहिए कि मृत्युदंड मामलों के एकमात्र औचित्य के रूप में ''सामाजिक आवश्यकता'' के उपयोग पर न्यायालय में कोई एकमत नहीं है । ऐसी कसौटी जो स्पष्ट शब्दों में बच्चन सिंह [(1980) 2 एससीसी 684 ; 1980 एससीसी (क्रि0) 580] वाले मामले प्रकट होती है, यह है कि न्यायालयों को विचारार्थ अपराध की गंभीरता या प्रकृति पर ध्यान दिए बिना, अपराध और अपराधी दोनों से संबंधित गुरुतरकारी और उपशमनकारी परिस्थितियों का विश्लेषण खुले मन से करना चाहिए । पूर्वोक्त आधारों पर निष्पक्ष विश्लेषण आवश्यक है । न्यायालयों को संवेदनाओं और भावनाओं पर जीवन और मृत्यु और ऋजुता को प्राथमिकता देनी चाहिए ।

Archive

76. ओम प्रकाश बनाम राजस्थान राज्य [(1999) 3 एससीसी 19 : 1999 एससीसी (क्रि0) 334] वाले मामले में न्यायमूर्ति के टी. थामस ने ''समाज की पुकार'' के प्रति प्रतिक्रिया और ''गुरुतरकारी और उपशमनकारी परिस्थितियों'' को संतुलित करने की बच्चन सिंह [(1980) 2 एससीसी 684 : 1980 एससीसी (क्रि0) 580] की उक्ति को पूरा करने के बीच वास्तविक तनाव पर विचार किया ।

5. मृत्युदंड देने के विपरीत आनुकल्पिक दंड का अविर्भाव

यह भी उल्लेखनीय है कि पिछले कुछ वर्षों से उच्चतम न्यायालय ने मृत्यु वाले मामलों में प्रस्तुत चुनौतियों के उत्तर के रूप में ''पूर्ण जीवन'' या आजीवन दंडादेश के दंड हेतु वर्षों की निश्चित संख्या नियत की है । उच्चतम न्यायालय ने स्वामी श्रद्धानंद (2) वाले मामले के तीन न्यायाधीश की न्यायपीठ की ओर से निर्णय सुनाते हुए निम्नलिखित शब्दों में इस निर्गमित दंड विकल्प की आधारशिला रखी :

''92. मामले को थोड़ी भिन्न दृष्टि से देखा जा सकता है । दंड देने के मुद्दे के दो पहलू है । दंडादेश अत्यधिक और असम्यक् कठोर हो सकता है या अत्यधिक अननुपातिकतः अपर्याप्त हो सकता है । जब कोई अपीलार्थी विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत और उच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट मृत्यु दंडादेश के साथ इस न्यायालय में आता है तो वर्तमान अपील की तरह यह न्यायालय यह पता लगा सकता है कि मामला विरल से विरलतम प्रवर्ग के अंतर्गत नहीं आता और मृत्यु दंडादेश का पृष्ठांकन करने में कुछ अनिच्छुक महसूस कर सकता है । वहीं, अपराध की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय दृढ़तः यह महसूस कर सकता है कि छूट के अधीन आजीवन कारावास के दंडादेश की अवधि प्रसामान्यतः 14 वर्ष की निकलती है जो घोर अननुपातिक और अपर्याप्त है । तब न्यायालय को क्या करना चाहिए ? यदि न्यायालय का विकल्प केवल दो दंड तक सीमित है, एक सभी उद्देश्यों और प्रयोजनों के लिए 14 वर्ष से अनधिक कारावास का दंडादेश और दूसरा मृत्यु, तो न्यायालय मृत्युशास्ति

को पृष्ठांकित करने के प्रति आकर्षित और स्वयं को इसे प्रेरित करने वाला महसूस कर सकता है । निश्चित ही ऐसा अनुक्रम भयावह होगा । अधिक उचित, युक्तियुक्त और सही अनुक्रम विकल्पों का विस्तार करना होगा और वस्तुतः 14 वर्ष के कारावास और मृत्यु के बीच बृहत् रिक्ति को अधिकार में लेना होगा जो विधितः न्यायालय की परिधि में है । इस पर बल देने की आवश्यकता है कि न्यायालय को प्राथमिकतः विस्तारित मामले के तथ्यों में विकल्प का आश्रय लेना होगा क्योंकि 14 वर्ष के कारावास का दंडादेश कतई दंड न देने के समान होगा ।

93. इसके अतिरिक्त, यद्यपि बिल्कुल थोड़े मामलों के लिए दंडादेश का विशेष प्रवर्ग गठित करने से कानूनी पुस्तक पर मृत्युशास्ति रखने हेतु काफी फायदा होगा किन्तु वस्तुत, इसका उपयोग यथासभव बहुत कम, सचमुच विरल से विरलतम मामलों में ही करें । यह दंडशास्त्र के आधुनिक प्रवृत्ति के अनुसार होने के अलावा बच्चन सिंह वाले [(1980) 2 एससीसी 684 : 1980 एससीसी (क्रि0) 580 : एआईआर 1980 एससी 898] वाले मामले के संविधान न्यायपीठ के विनश्चय का का पुनः प्राख्यान ही होगा ।"

स्वामी श्रद्धानंद (2) वाले मामले की मताभिव्यक्तियों का अनुसरण न्यायालय द्वारा हारु घोष बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य[27], उ. प्र. राज्य बनाम संजय कुमार[28], सेवस्तियन बनाम केरल राज्य[29], गुरवैल सिंह बनाम पंजाब राज्य[30], जैसे कई मामलों में किया गया जहां मृत्युशास्ति के विपरीत पूर्ण जीवन या निश्चित वर्षों की संख्या का दंडादेश अधिनिर्णीत किया गया ।

6. सीमांतकों के विरुद्ध मृत्युदंड का अनियमित उपयोजन

---

[27] (2009) 15 एससीसी 551

[28] (2012) 8 एससीसी 537

[29] (2010) 1 एससीसी 58

[30] (2013) 2 एससीसी 713

बच्चन सिंह वाले मामले में जहां मृत्युशास्ति की संवैधानिकता कायम रखी गई थी, न्यायमूर्ति भगवती ने अपनी विसम्मत राय इस प्रकार व्यक्त की :

> "81. मृत्युशास्ति का एक अन्य लक्षण भी है जो विनिश्चित मामलों के अध्ययन से पता चला है और वह यह है कि मृत्यु दंडादेश कतिपय वर्ग रूप या वर्ग पक्षपात के प्रति है क्योंकि अधिकांशतः गरीब और पददलित लोग ही हैं जो अंतिम शास्ति के शिकार हैं । हम मुश्किल से ही किसी धनवान या प्रभावशाली व्यक्ति को फांसी पर चढ़ते हुए पाते हैं । वार्डेन डफी द्वारा किए गए संकेत के अनुसार, मृत्युदंड "गरीब का विशेषाधिकार" है । एक प्रख्यात मृत्युशास्ति मामले में न्यायमूर्ति डगलस ने भी यह मत व्यक्त किया, भूतपूर्व एटर्नी पामसे क्लार्क ने कहा : 'यह गरीब, बीमार, अज्ञानी, शक्तिहीन और घृणित लोग हैं जिन्हें फांसी दी जाती है ।" इसी प्रकार, ओहियो के गवर्नर डाइसैल ने मृत्युशास्ति के बारे में अपने व्यक्तिगत अनुभव से यह कहा :
>
> "ओहियो के गवर्नर के रूप में अपने अनुभव के दौरान, मैंने मृत्यु की कतार वाले व्यक्तियों में एक सामान्य बात पायी ; वे सभी निर्धन थे । अल्प बौद्धिक क्षमता, कम या बिल्कुल शिक्षा से हीन, कुछ मित्र, टूटे घर एक जैसे अन्य लक्षण हैं, किन्तु यह तथ्य कि उनके पास धन नहीं था, मृत्यु से उनके दंडित होने का प्रमुख कारक था...।"

न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर ने राजेन्द्र प्रसाद वाले मामले में [(1979) 3 एससीसी 646 : 1979 एससीसी (क्रि0) 749 : एआईआर 1979 एससी 916 : 1979 क्रि ला.ज. 792] प्रायिक प्रभाव और ओज के साथ अपनी अद्वितीय शैली से भिन्न कठोर भाषा में इसी बिन्दु पर इस प्रकार बल दिया :

> ".... कुल मिलाकर, ऐसे कौन लोग हैं जिन्हें फांसी निगल जाती है ? सफेदपोश अपराधी या कारपोरेट अपराधी जिनके जानबूझकर किए गए आर्थिक और पर्यावरणीय अपराध से

सामूहिक मृत्यु होती है या जो हत्याकर्ताओं को भाड़े पर लेते हैं और दूरस्थ नियंत्रण से हत्या करते हैं ? विरले ही । कुछ अपवादों के साथ वे बिल्कुल फांसी से नहीं डरते । पुश्तैनी दुश्मनी रखने वाले ग्रामवासी, देशी शराब से मदमस्त, हार से निराश हड़ताल करने वाले कर्मकार, पैशाचिक कुशासन से सामाजिक व्यवस्था को परिवर्तित करने के आशय वाले राजनैतिक विरोधी और बलिदान करने वाले परिमोचक, बेघर और घुमन्तू जिन्हें समाज ने उपेक्षा द्वारा निष्ठुर बना दिया है, या घोर आवश्यकता से प्रभावित गरीब गृहपति - पति या पत्नी, या झल्लाहट से तंग - ही ऐसे लोग है जो वीभत्स जल्लाद के प्रातःकालीन आहार हैं । (एससीसी पृष्ठ 674-75, पैरा 72)

ऐतिहासिक रूप से, मृत्युदंड संभवतः वर्ग पक्षपाती और रंग रूपधारी रहा है, यहां तक कि आपराधिक विधि दोनों पर भौंकती है किन्तु स्वामित्वधारकों को बचाने के लिए सर्वहारावर्ग को काटता है । आनुषंगिकतः कारण यह स्पष्ट करता है कि शीर्षस्थ प्रशासकों सहित कारपोरेट अपराधी जो सूक्ष्म प्रक्रियाओं के माध्यम से अपमिश्रण, तस्करी, बाजार समेटने और अन्य अदृश्य संक्रियाओं द्वारा काफी लोगों की धीमी या अचानक वध करने के जिम्मेदार हैं, वांटेड सूची में नहीं हैं और उनकी नियम विरोधी संक्रियाएं जिससे प्रत्यक्षतः माफिया और सफेदपोश अपराधों से वे लाभ कमाते हैं, पर मृत्युशास्ति लगाने पर विचार नहीं किया जाता जबकि अपेक्षाकृत कम अपचार करने वाले लोग कानूनी और न्यायालयिक वाक्पटुता से अंतिम शास्ति के पात्र होते हैं'' (एससीसी पृष्ठ 675, पैरा 75)

इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि वास्तविक प्रचालन में मृत्युशास्ति विभेदकारी है, क्योंकि अधिकांशतः यह समुदाय के गरीब और वंचित वर्ग को प्रभावित करता है और अमीर और धनवान प्रायः इसकी जंजीरों से बच जाते हैं । यह परिस्थिति भी मृत्युशास्ति के मनमाने और स्वेच्छाचारी प्रकृति से जुड़ जाती है और अनुच्छेद 14 और 21 के अतिक्रमण होने के रूप में इसे असंवैधानिक ठहराता है ।''

तत्पश्चात्, इस भावना को मोहम्मद फारुक अब्दुल गफूर और एक अन्य बनाम महराष्ट्र राज्य[31] वाले मामले में प्रतिध्वनित किया गया जिसमें न्यायालय ने कहा :

> "169. विलम्ब के विषय पर प्रणाली की अंतनिर्हित अपूर्णता, उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय में मुकदमेबाजी का बढ़ता खर्च, विधिक सहायता और न्यायालयों की पहुंच और अपराधों के सामाजिक-आर्थिक और दंडशास्त्रीय संदर्भ में अस्पष्ट जानकारी के कारण स्थिति बिगड़ती जा रही है । ऐसे संदर्भ में, मृत्युशास्ति के कुछ प्रमुख समीक्षकों का यह मत है कि निरापद रूप से सीमांतक और विपदग्रस्त ही ऐसे लोग हैं जो अंततः अंतिम शास्ति भुगतते हैं ।"

फिर भी, वर्ष 2008 में, "प्राणघातक लाटरी : भारत में मृत्युशास्ति" शीर्षक से अमनेस्टी अंतरराष्ट्रीय भारत और पीपुल्स यूनियन फार सिविल लिबर्टीज (तमिलनाडु और पुडुचेरी) द्वारा तैयार किए गए संयुक्त रिपोर्ट में भी असुविधाग्रस्त समूहों के विरुद्ध मृत्युशास्ति के अननुपातिक उपयोग को उजागर किया गया है । रिपोर्ट में यह मत व्यक्त किया :

> "मनमानापन घातक है, किन्तु यह चुनिंदा और विभेदकारी है । प्राणाघातक लाटरी का बेतरतीबपन अर्थात् भारत में, मृत्युशास्ति संभवतः उतना बेतरतीब नहीं है । निश्चित ही यह कहा जा सकता है कि कम संपत्ति और प्रभाव रखने वाले व्यक्ति को मृत्यु का दंडादेश पाने की अधिक संभावना है । यह प्रभावी विधिक प्रतिनिधित्व (धारा 7.1) और विचारणपूर्ण अन्वेषण और साक्ष्य के संग्रहण (धारा 6.1.1) के बारे में इस रिपोर्ट के भाग 2 में व्यक्त चिन्ताओं में निहित है । स्वयं उच्चतम न्यायालय ने मृत्युदंडादेशों में वर्ग पक्षपात को स्वीकार किया है ।"

7. दया शक्तियों के मनमाने प्रयोग के परिणामस्वरूप मृत्युदंड प्राप्त कैदियों के मूल अधिकारों का अतिक्रमण

---

[31] (2010) 14 एससीसी 641

Archived

शत्रुघ्न चौहान वाले मामले में, पन्द्रह दोषसिद्ध व्यक्तियों को उनकी दया याचिका के निपटान में अतिविलंब के कारण उनके मृत्युदंड को कम करते हुए न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :

> "244. यह सुस्थापित है कि राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा अनुच्छेद 72/161 के अधीन शक्ति का प्रयोग करना एक संवैधानिक बाध्यता है न कि मात्र परमाधिकार । उच्च पद प्रास्थिति को देखते हुए, संविधान निर्माताओं ने उक्त अनुच्छेदों के अधीन दया याचिकाओं के निपटान के लिए कोई बाहरी समय सीमा अनुबंधित नहीं की जिसका यह अर्थ है कि इसका विनिश्चय युक्तियुक्त समय के भीतर किया जाना चाहिए । तथापि, जब दया याचिकाओं के निपटान में हुआ बिलंब अयुक्तियुक्त, अस्पष्टीकृत और काफी ज्यादा पाया जाता है तो इस न्यायालय का यह कर्तत्य है कि इस पहलू पर दखल दे और विचार करे । संविधान के अनुच्छेद 72/161 के अधीन दया की मांग का अधिकार एक संवैधानिक अधिकार है न कि कार्यपालिका के विवेकाधिकार या सनकपन पर । प्रत्येक संवैधानिक कर्तव्य का पालन सम्यक् सतर्कता और सावधानी से किया जाना चाहिए, अन्यथा न्यायिक हस्तक्षेप इसके मूल्यों को कायम रखने के लिए संविधान का समादेश है ।"

याचिकाकर्ताओं को अनुतोष प्रदान करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने ऐसे कई मामलों का अवलंब लिया जहां उच्चतम न्यायालय ने यह मान्यता प्रदान की है कि राज्यपाल या राष्ट्रपति द्वारा दया याचिकाओं के निपटान में अति बिलंब ऐसे मृत्युदंड प्रापत कैदियों के अनुच्छेद 21 के अधिकारों का अतिक्रमण करता है जो तदुपरांत उन्हें मृत्युदंड को आजीवन कारावास में परिवर्तित करने के अनुतोष का हकदार बनाता है । उच्चतम न्यायालय ने शेर सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य[32] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 21 के अधिकार किसी व्यक्ति के पास तब तक है जब तक वह जीवित है और यह कि वे न्यायिक प्रक्रिया, विचारण, दंडादेश और दंडादेश के निष्पादन के सभी प्रक्रमों को सुसंगत और उपयोज्य हैं । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसे मामलों

---

[32] (1983) 3 एससीसी 344

में, यदि मामले के तथ्यों में विलंब को अत्यधिक और अन्यायोचित होना दर्शाया जाता है तो मृत्युदंड का निष्पादन अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण करते हुए कठोर और अमानवीय दंड के समान होगा तथा न्यायालय को मृत्युदंडादेश को लघूकृत करना चाहिए । इसके अतिरिक्त, श्रीमती त्रिवेणी बेन बनाम गुजरात[33] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने स्पष्ट विनिर्णय में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :

> ''मृत्युदंड के निष्पादन में असम्यक् दीर्घ विलंब दंडित व्यक्ति को अनुच्छेद 32 के अधीन इस न्यायालय में आवेदन करने का हकदार बनाएगा किन्तु यह न्यायालय कारित विलंब की प्रकृति और ऐसी परिस्थितियां जो न्यायिक प्रक्रिया द्वारा अंतिम रूप से दंडादेश के पुष्ट होने के पश्चात् उद्भूत हुईं, की ही परीक्षा करेगा और उसे अंतिम रूप से मृत्युदंड कायम करते समय न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों पर फिर से विचार करने की कोई अधिकारिता नहीं होगी । तथापि, यह न्यायालय यह विनिश्चित करने के लिए क्या दंडादेश का निष्पादन किया जाना चाहिए या आजीवन कारावास में परिवर्तित किया जाना चाहिए, मामले के सभी परिस्थितियों के आलोक में अति विलंब के प्रश्न पर विचार कर सकता है । विलंब की किसी नियत अवधि को मृत्यु दंडादेश को अनिष्पाद्य बनाने वाला अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता और इस हद तक वथीश्वरन वाले मामले के विनिश्चय को सही विधि अधिकथित किया गया नहीं कहा जा सकता, अतः, उस हद तक उलटा जाता है ।''

मृत्युशास्ति विधि की इस अद्भूत शाखा का अवलंब लेते हुए, उच्चतम न्यायालय ने कार्यपालिक प्राधिकारियों द्वारा दया याचिकाएं खारिज करने में विलंब के कारण निष्पादनों पर पूर्व मामलों में भी रोक लगा दी है । महेन्द्र नाथ दास बनाम भारत संघ[34], मधु मेहता बनाम भारत संघ[35], के. पी.मोहम्मद बनाम केरल राज्य[36], शिवजी जयसिंह बाबर बनाम महराष्ट्र

---

[33] (1989) 1 एससीसी 678

[34] (2013) 6 एससीसी 253

[35] (1989) एससीसी (क्रि.) 705

[36] 1984 सप्ली (1) एससीसी 684

राज्य[37], दया सिंह बनाम भारत संघ[38] और जावेद अहमद अब्दुल हामिद पावला बनाम महराष्ट्र राज्य[39] वाले मामलों में उच्चतम न्यायालय ने मृत्युदंड प्राप्त कैदियों को फांसी लगाने से कार्यपालिक प्राधिकारियों को प्रतिषिद्ध किया ।

भाग 5. मृत्युशास्ति पर वर्तमान अनुसंधान की स्थिति

भारत में मृत्युशास्ति के मुद्दे पर अनुसंधान की शोचनीय स्थिति रही है । न्यायपालिका द्वारा मृत्युशास्ति विधि के उपयोजन पर अनुसंधान की स्थिति इतनी अपर्याप्त है कि इस मुद्दे पर ज्ञानप्रद और सख्त नीति विश्लेषण के अवसर गंभीर रूप से बाधित हैं । मुद्दे पर अध्ययन की कमी के वर्तमान वातावरण में उच्चतम न्यायालय द्वारा उठाई गई संवैधानिक चुनौती या विधि में विधायी परिवर्तन पूरा नहीं होगा । कुछ ऐसे महत्वपूर्ण अध्ययन जिन्होंने भारत में मृत्युशास्ति वातावरण के मूल्यांकन का साहस किया, जानकारी के लिए समुचित नहीं है ।

बच्चन सिंह वाले मामले में एंथोनी बल्कशील्ड द्वारा लिखे गए एक अनुभवाश्रित पत्र में, मृत्यु दंडोदशों के अधिनिर्णय के मनमानेपन का मुद्दा उभर कर आया । लेखक ने 1972 से 1976 के बीच उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए 70 निर्णयों के अध्ययन से यह साबित किया कि किसी विशिष्ट मामले में मृत्युशास्ति अधिनिर्णय विधि की स्थिति या मामले के तथ्यों के बजाय विषय पर संबद्ध न्यायाधीश के मतों का कार्य अधिक रहा है[40] ।

एमनेस्टी इन्टरनेशनल, भारत और पीपुल्स यूनियन फार सिविल लिबर्टीज द्वारा संयुक्त रूप से किए गए "प्राणघातक लाटरी : भारत में मृत्युशास्ति" शीर्षक के एक अन्य महत्वपूर्ण अध्ययन ने 1950 से भारत में मृत्युशास्ति के प्रशासन में अंतरालों और कमजोरियों की रूप रेखा

---

[37] (1991) 4 एससीसी 375

[38] (1991) 3 एससीसी 61

[39] (1985) 1 एससीसी 275

[40] ए आर बल्कशील्ड, "भारत में मृत्युदंड" (179) 21(2) भारतीय विधि संस्थान जर्नल 137

Archive

तैयार की । मृत्युशास्ति पर उच्चतम न्यायालय विनिश्चय के अपने विश्लेषण की रिपोर्ट में यह अभिलिखित किया कि "भारत में मृत्युशास्ति अपराध और अपराधियों के साथ बर्ताव करने का मनमाना, अयथार्थ और अनुचित साधन रहा है ।" इस रिपोर्ट को बरियार, मोहम्मद फारुक अब्दुल गफूर और स्वामी श्रद्धानंद (2) वाले मामलों में निर्दिष्ट किया गया ।

अमेरिकन ला इंस्टीटूयूट (एएलआई) द्वारा हाल ही में कराए गए अध्ययन ने यह निष्कर्ष निकाला कि अमेरिकन मृत्युशास्ति प्रणाली में अंतनिर्हित कमियां और अऋजुता इतनी असाध्य है और संरचनात्मक डिजाइन में इस प्रकार अंतर्भूत है और इसका सुधार अप्राप्य है[41] । यथाकथित स्टीकर कमेटी रिपोर्ट के कारण ए एल आई ने अपने मोडल दंड संहिता से मृत्युदंड पर अनुबंध को वापस लिया ।

मृत्युशास्ति पर मोडल दंड संहिता अनुबंध, जो 1962 में शामिल किया गया था, ग्रेग बनाम जार्जिया[42] वाले मामले में यू. एस. उच्चतम न्यायालय का एक महत्वपूर्ण मेख था जिसमें न्यायालय ने यूनाइटैड स्टेट्स में मृत्युशास्ति की संवैधानिकता की पुनः पुष्टि की । यू. एस. उच्चतम न्यायालय ने यह समझाने के लिए मोडल दंड संहिता के उपबंध को उद्धृत किया कि मृत्युदंड की संवैधानिकता को सुरक्षित कराने के मार्ग हैं । स्टीकर समिति ने निम्नलिखित शब्दों में मृत्युशास्ति के प्रशासन के संबंध में सुधार की पहल की असफलता का उल्लेख किया :

> "मृत्युशास्ति को संवैधानिकतः विनियमित करने के लिए असफल प्रयासों का पूर्वगामी पुनिर्वलोकन, ऐसी कठिनाइयां जो इसके प्रशासन को तिरोहित करती रहती है, और उन बुराइयों के उपचार के लिए ढांचागत और संस्थागत अड़चनें ऐसे विषय है जिन पर संस्थान हमारी सिफारिशों का आधार गठित करते हैं । मृत्युदंड न्याय प्रक्रिया की इन खामियों की चिरकालिक मान्यता, उन खामियों को दूर करने हेतु व्यापक संवैधानिक विनियमन की असमर्थता और सार्थक सुधार के लिए अपरिमित ढांचागत अवरोधों के कारण भी सलाहकार 210.6 के नए प्रारूप

[41] मृत्युशास्ति विषय पर अमेरिकन ला इंस्टीट्यूट

[42] 428 यू. एस. 153 (1976)

Archived

> या प्रस्ताव के अतिव्यापक सेट के रूप में मृत्युदंड पर संस्थान द्वारा विधि सुधार परियोजना का उत्तरदायित्व लेने के कठोर विरोधी थे । बल्कि, ये स्थितियां दृढ़तः यह इंगित करती हैं कि संस्थान यह मान्यता प्रदान करता है कि मृत्युदंड की पर्याप्त रूप से प्रशासित संत्ता के लिए पूर्व-शर्तें वर्तमान में विद्यमान नहीं है और युक्तियुक्ततः प्राप्त करने की प्रत्याशा भी नहीं की जा सकती है ।"

यह उल्लेखनीय है कि बच्चन सिंह वाले मामले में यथा प्रतिपादित 'विरल से विरलतम' सिद्धांत के पहलू भी मृत्युशास्ति पर एएलआई मोडल दंड सहिता के उपबंध से प्रेरित थे । अब यह कि मोडल दंड संहिता उपबंध वापस ले लिया गया है, यह अनिवार्य है कि संवैधानिक मानकों के प्रति मृत्युशास्ति की भारतीय प्रणाली के संदर्भ में उपयुक्तता के निर्धारण के लिए समरूप अध्ययन भी किया जाना चाहिए । अन्य सहबद्ध मुद्दों के साथ-साथ मृत्युशास्ति के संवैधानिक विनियम के अध्ययन का विधि आयोग का यह प्रयास उस सीमा तक इस मुद्दे पर महत्वपूर्ण शैक्षिक शून्यता को पूरा करेगा ।

भाग 6. वर्तमान अध्ययन के लिए विचार आमंत्रित करना

पूर्वोक्त के आलोक में, मृत्युदंड का मुद्दा विधि आयोग को एक बहुत अच्छा अनुसंधान विषय उपलब्ध कराता है । आयोग विभिन्न विचारण न्यायालयों, उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय से मृत्युशास्ति संबंधित आकड़े एकत्र करने का प्रस्ताव करता है । कारागार प्राधिकारियों से भी मृत्युदंड प्राप्त स्थितियों पर आंकड़ों के लिए अनुरोध किया जाएगा । आयोग विभिन्न मृत्युशास्ति प्रकरणों पर मात्रात्मक और गुणात्मक अनुसंधान करने के लिए विभिन्न विधि विद्यालयों को भी शामिल करेगा ।

अतः, यह अनुसंधान परियोजना समयबद्ध है और इस अति विवादित प्रकरण पर अधिक शिक्षाप्रद, संतुलित और युक्तियुक्त सार्वजनिक बहस बनाने की अधिक आवश्यकता है । इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए आयोग इस परामर्श पत्र के माध्यम से इस मुद्दे पर सभी समुदाय के जागरूक नागरिकों से अपने विचार देने का आग्रह करता है । सहायता के रूप में एक प्रश्नावली भी सहबद्ध है जो ऐसे लोगों के लिए सहायक

Archived

सिद्ध होगी जो मृत्युशास्ति के विभिन्न पहलुओं पर अपने विचार व्यक्त करना चाहते हैं ।

मृत्युदंड पर प्रश्नावली

1. क्या आप कानूनी पुस्तक में मृत्युदंड को प्रतिधारित करना चाहते हैं ? (यदि प्रतिधारण के पक्ष में हैं तो कृपया प्रश्न सं. 2 और 3 देखें । यदि प्रतिधारण के पक्ष में नहीं है, तो कृपया प्रश्न सं. 4 देखें)

2. यदि मृत्युदंड के प्रतिधारण के पक्ष में हैं, तो इसके लिए अपना कारण बताए –

   (क) मृत्युदंड भावी अपराधों के लिए निवारक के रूप में कार्य करता है ।

   (ख) मृत्युशास्ति के द्वारा प्रतिकार पीड़ित के लिए न्याय प्राप्त करने का सर्वाधिक प्रभावी साधन है और पीड़ित/पीड़ित के कुटुम्ब और समाज के बीच दूरी को कम करता है ।

   (ग) मृत्युदंड यह सुनिश्चित करता है कि दोषसिद्ध व्यक्तियों को पुनः समाज में वापस न छोड़ा जाए क्योंकि वे भविष्य में खतरा पैदा कर सकते हैं ।

   (घ) मृत्युदंड दोषसिद्ध व्यक्तियों को कारावास से बच निकलने के अवसर को कम करता है ।

   (ङ) ऐसे लोग जो मृत्युदंड अपराध के अभियुक्त है, सुधार का अवसर पाने के पात्र नहीं हैं ।

   (च) अपराध की कठोरता के समानतः कठोर दंड का अधिदेश होना चाहिए ।

   (छ) मृत्युदंड यह सुनिश्चित करता है कि कारागारों में अधिक जनसंख्या/अधिक भीड़भाड़ न हो क्योंकि वर्तमान कारागार अवसंरचना अधिक आजीवन कारावास से दंडित कैदियों को समायोजित करने के लिए अपर्यापत है ।

   (ज) मृत्युदंड राज्य पर कम वित्तीय बोझ डालता है क्योंकि किसी आजीवन कारावास से दंडित दोषसिद्ध व्यक्तियों को कारागार

Archived

में रखने का खर्च अधिक हो सकता है ।

(ञ) कोई अन्य कारण

3. मृत्युशास्ति के समर्थन में उपरोक्त में से कौन सा तर्क सर्वाधिक ठोस है ।

(क) निवारण

(ख) न्याय

(ग) पीड़ित/पीड़ित के कुटुम्ब के लिए दिए गए प्रभावी दंड का समाधान

(घ) लागत

4. यदि आप मृत्युदंड के उत्सादन के पक्ष में हैं, तो कृपया इसके लिए अपना कारण बताएं –

(क) ऐसा निश्चायक सबूत नहीं है कि मृत्युदंड भावी अपराधों के लिए निवारक के रूप में कार्य करता है ।

(ख) मृत्युदंड ऐसे दोषसिद्ध व्यक्ति के कुटुम्ब के लिए विपत्ति और आघात अधिरोपित करता है जिनकी अपराध में कोई भूमिका नहीं थी ।

(ग) मृत्युदंड न्याय से प्रतिकार के विचार को भ्रमित करता है और समाज को "आंख के बदले आंख" की अवधारणा से बचना चाहिए ।

(घ) मृत्युदंड व्यक्ति को सुधार के अवसर से वंचित करता है ।

(ङ) अधिकांश देशों ने मृत्युदंड को उत्सादित कर दिया है ।

(च) मृत्युदंड का अधिरोपण जोखिम से मुक्त नहीं है क्योंकि निर्दोष व्यक्तियों को मृत्युदंड से दंडित होने की संभावना है ।

(छ) मृत्युदंड का उपयोजन अत्यधिक न्यायाधीश केन्द्रित है और मृत्युदंड के विरुद्ध का पक्ष में न्यायाधीश के व्यक्तिगत विश्वास पर निर्भर करता है ।

(ज) धनी लोगों की तुलना में आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े समूहों के लिए हमेशा मृत्युदंड के अधीन होने की

Archived

अधिक संभावना होती है ।

(झ) मृत्युदंड राज्य प्रायोजित हिंसा का एक रूप है ।

(ञ) फांसी देने का तरीका अर्थात् गर्दन द्वारा मृत्यु तक लटकाया जाना क्रूरता है ।

(ट) कोई अन्य कारण ।

5. आपकी राय में, क्या मृत्यु दंड के अनुकल्प के रूप में आजीवन कारावास के दंडादेशों से प्रश्न सं. 2 में वर्णित तर्कों का प्राप्त किया जा सकता है (क्या छूट/प्रविलंबन, लघूकरण मंजूर करने के पूर्व सभी कैदियों के पुनर्विलोकन की कठोर और सावधिक प्रणाली है ? कृपया उपदर्शित करें, क्यों ।

6. हाल ही का दंड विधि (संशोधन) अधिनियम, 2013 बलात्संग (धारा 376ङ) के दोबारा अपराध के लिए मृत्युदंड का उपबंध करता है । क्या मृत्युदंड को गैर-मानववध अपराधों तक विस्तारित किया जाना चाहिए ? इसके लिए अपना कारण बताएं ।

7. आपकी राय में क्या हत्या का अपराध आतंकवादी कार्य की तरह कठोर और घृणित है ?

8. क्या दंड देने के प्रयोजन के लिए हत्याओं को विभिन्न प्रवर्गों में बांटा जाना संभव है, अर्थात्

(क) मृत्यु से दंडनीय हत्या
(ख) आजीवन कारावास से दंडनीय हत्या

यदि हां, तो किन हत्याओं को आप प्रवर्ग क में शामिल करना चाहेंगे ?

9. क्या आप इस मत का समर्थन करते हैं कि सामान्य परिस्थितियों के अधीन आजीवन कारावास का दंड हत्या के लिए पर्याप्त है किन्तु गुरुतरकारी परिस्थितियों में न्यायालय मृत्युशास्ति अधिनिर्णीत कर सकेगा ?

Archived

10. क्या दंड देने के प्रयोजन के लिए अपराधों को विभिन्न प्रवर्गों में विभाजित करना संभव है, अर्थात् –
    (क) आतंकवादी अपराध
    (ख) गैर-आतंकवादी अपराध

यदि हां, तो क्या आप चाहते हैं कि मृत्युदंड प्रवर्ग (क) के लिए प्रतिधारित और प्रवर्ग (ख) के लिए उत्सादित किया जाए ?

11. क्या आप समझते हैं कि पुलिस अन्वेषण और साक्ष्य के एकत्रीकरण की विद्यमान अवसंरचना पूर्ण दोषरहित है और गलत दोषसिद्धियां बिल्कुल न होने की गारंटी देती है ?

12. आपकी राय में, क्या मृत्युदंड दिए जाने वाले अपराधों के लिए युक्तियुक्त संदेह से परे सबूत के अतिरिक्त उच्चतर सबूत के भार की अपेक्षा होनी चाहिए ?

13. क्या आप यह विश्वास करते हैं कि मृत्युदंड देने की व्यवस्था में न्यायाधीश केन्द्रित होने का जोखिम है ?

14. आपकी राय में, मृत्युदंड से दंडादिष्ट अपराधियों के कुटुम्बों के पुनर्वास का उपबंध होना चाहिए ?

15. क्या आप फांसी लगाने अर्थात् मृत्यु तक गर्दन द्वारा लटकाए जाने के वर्तमान तरीके से सहमत हैं । उपदर्शित करें क्यों । कृपया फांसी लगाने का कोई अन्य बेहतर तरीका सुझाएं ।

16. आपकी राय में, क्या मृत्युशास्ति वाले मामलों में भारत के संविधान के अधीन दया मंजूर करने की शक्तियों के प्रयोग के लिए भारत के राज्यपाल और राष्ट्रपति के लिए आज्ञापक मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित किया जाना चाहिए ।

Archived